# सम्यक्त्वका अमूढ़दृष्टि अङ्ग : एक महत्त्वपूर्ण परीक्षण-सिद्धान्त

यों तो सभी दर्शनों एवं मतोंमें अपने-अपने सिद्धान्त एवं आदर्श हैं। पर जैन दर्शनके आदर्श एवं सिद्धान्त किसी व्यक्ति या समाज विशेषको लक्ष्यमें रखकर स्थापित नहीं हुए। वे हर व्यक्ति, हर समाज हर समय और हर क्षेत्रके लिए उदित हुए हैं। उनका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति और समाजका उत्थान तथा कल्याण करना है। अतएव जैनधर्मके प्रवर्तकों एवं स्थापकोंने जहाँ आत्म-विकास तथा आत्म-कल्याणपर बल दिया है वहाँ बिना किसी चौकाबाजीके दूसरोंके, चाहे वे उनके अनुयायी हों या न हों, उत्थान तथा कल्याणका भी ध्येय रखा है। जैन दर्शन जैनधर्मके इसी ध्येयकी पूर्तिके लिए उनके द्वारा आविष्कृत हुआ है। धर्म और दर्शनमें यही मौलिक अन्तर है कि धर्म श्रद्धामूलक है और दर्शन विचारमूलक। जब तक दर्शन द्वारा धर्मको पोषण नहीं मिलता तब तक वह धर्म कोरा अन्धानुकरण समझा जाता हैं। अतः आवश्यक है कि धर्म-संस्थापक धर्मको दर्शन द्वारा प्राणवान् बनायें। ज्ञात होता है कि इसी दृष्टिको सामने रखकर लोककी गतानुगतिकता एवं अन्धानुकरणको रोकने तथा उचित एवं सत्य मार्गका अनुसरण करनेके लिए जैन मनीषियों तथा सन्तोंने धर्मके उपदेशके साथ दर्शनका भी निरूपण किया है और उसके सिद्धान्तोंकी स्थापना की है। आज हम इस छोटे-से लेखमें जैन-दर्शनके महत्त्वपूर्ण परीक्षण-सिद्धांतके सम्बन्धमें विचार करेंगे।

## परीक्षण-सिद्धांत : एक वैज्ञानिक तरीका

यह जैन-दर्शनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रमुख सिद्धान्त है। इसके द्वारा बताया गया है कि किसी बातको ठोक-बजाकर—परीक्षा करके ग्रहण करो। उसे इसलिए ग्रहण मत करो कि वह अमुककी कही है और उसे इसलिए मत छोड़ो कि अमुककी कही हुई नहीं है। परीक्षाकी कसौटी पर उसे कस लो और उसकी सत्यता-असत्यताको परख लो। यदि परख द्वारा वह सत्य जान पड़े, सत्य साबित हो तो उसे स्वीकार करो और यदि सत्य प्रमाणित न हो तो उसे स्वीकार मत करो, उससे ताटस्थ्य (उपेक्षा—न राग और न द्वेष) रखो। जीवन बहुत ही अल्प है और इस अल्प जीवनमें अनेक कर्त्तव्य विधेय हैं। उसके साथ खिलवाड़ नहीं होना चाहिए। एक पैसेकी हाँडी खरीदी जाती है तो वह भी ठोक-बजाकर ली जाती है। तो धर्मके क्रय (ग्रहण) में भी हाँड़ीकी नीतिको क्यों नहीं अपनाना चाहिए? उसे भी परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिए। अतः जीवन-विकासके मार्गको चुननेके लिए परीक्षण-सिद्धांत नितांत आवश्यक है और उसे सदैव उपयोगमें लाना चाहिए। एक बार लौकिक कार्योंमें उसकी उपेक्षा कर भी दी जाय, यद्यपि वहाँ भी उसकी उपेक्षा करनेसे भयंकर अलाभ और हानियाँ उठानी पड़ती हैं, पर धर्मके विषयमें उसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

एक बारकी बात है। काशीमें पंचकोशीकी यात्रा अश्विन-कार्तिकमें आरम्भ हो जाती है और लोग इस यात्राको पैदल चलकर करते हैं। यात्री गंगाजीके घाटोंके किनारे-किनारे जाते हैं। और सभी स्याद्वाद महाविद्यालयके जैन घाट (प्रभुघाट) से निकलते हैं। एक दिन हम लोगोंको क्या सूझा कि जैन घाटपर जाकर एक किनारे दो-तीन पत्थर रख दिए और उनपर फूल डालकर पानी छिड़क दिया। जब हम लोग वहाँसे चुप-चाप चले आये और विद्यालयके घाटपर आकर खड़े हो गये, तो थोड़ी ही देरमें हम देखते हैं कि



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ फूलों, मालाओं, खीलों और पैसोंका ढेर लग गया है। किसीने यह नहीं विचार किया कि यहाँ केवल पत्थर पड़े हैं, किसी देवताकी मूर्ति नहीं हैं तो फिर फूल आदि क्यों चढ़ाये जायें? इसीको गतानुगतिकता अथवा अन्धानुकरण कहते हैं। जैन-दर्शन कहता है कि ऐसी गतानुगतिकतासे कोई लाभ नहीं होता, प्रत्युत वह अज्ञानको बढ़ाती है। अतः धर्मके सम्बन्धमें परीक्षा-सिद्धान्त आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

जैनधर्ममें जहाँ सम्यक्त्वके आठ अंगोंका वर्णन किया गया है वहाँ उनमें एक 'अमूढ़दृष्टि' अङ्ग भी बतलाया गया है। यह 'अमूढ़दृष्टि' अंग परीक्षा-सिद्धांतको छोड़कर दूसरी चीज नहीं है। सत्यके खोजी-की दृष्टि निश्चय ही अमूढ़ा (मूढ़ा—अन्धी नहीं—विवेकयुक्त) होना चाहिए। उसके बिना वह सत्यकी खोज सही सही नहीं कर सकता। जैन दर्शनके इस अमूढ़दृष्टि बनाम परीक्षण-सिद्धांतके आधारपर जैन चिन्तकोंने यहाँ तक घोषणा की है कि देव (आप्त) को भी उसकी परीक्षा करके अपना उपास्य मानो। आ० हरिभद्र सूरिने लिखा है—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु। युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

'महावीरमें मेरा अनुराग नहीं है और कपिलादिकोंमें द्वेष नहीं है। किन्तु जिसकी बात युक्तिपूर्ण है वह ग्राह्य है।'

स्वामी समन्तभद्राचार्यने 'आप्तमीमांसा' नामका एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ ही इसी विषयपर लिखा है, जिसमें उन्होंने भगवान महावीरकी परीक्षा की है और परीक्षाके उपरान्त उन्हें उनमें परमात्माके योग्य गुणोंको पाकर 'आप्त' स्वीकार किया है। साथ ही उनके वचनों (तत्त्वोपदेशों—स्याद्वाद) की भी परीक्षा की है। आचार्य विद्यानन्द आदि उत्तरकालीन जैन तर्कलेखकोंने भी 'आप्तपरीक्षा' जैसे परीक्षा-ग्रन्थोंका निर्माण करके परीक्षण-सिद्धान्तको उद्दीपित किया है। वस्तुतः सत्यका ग्रहण श्रद्धासे नहीं, परीक्षासे होता है। उसके बिना अन्य उपाय नहीं है।

जिस परीक्षा-सिद्धांतको जैन विचारकोंने हजारों वर्ष पूर्व जन्म दिया उसीको आज समूची दुनिया स्वीकार करने लगी है। इतना ही नहीं, अपनी बातकी प्रामाणिकताके लिए उसे सर्वोच्च कसौटी माना जाने लगा है और उसकी आवश्यकता मानी जाती है। वह विज्ञान (Science) के नामसे सबकी जिह्वाओंपर है। इस विज्ञानके बल पर जहाँ भौतिक प्रयोग सत्य सिद्ध किये जा रहे हैं वहाँ प्रायः सभी मत वाले अपने सिद्धांत भी सिद्ध करनेको उद्यत हैं। जैन धर्मका 'अमूढ़दृष्टि' सिद्धान्त ऐसा सिद्धान्त है कि हम न धोखा खा सकते हैं और न अविवेकी एवं अन्धश्रद्धालु बन सकते हैं। अतः इस सिद्धान्तका पालन प्रत्येकके लिए सुखद है।

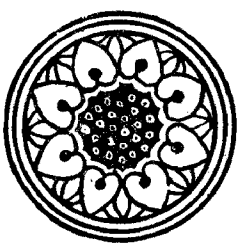



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org